RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-11
November -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

हिन्दी नाटकों पर मीडिया और अप संस्कृति के प्रभाव

डॉ. राज भारद्वाज

एसोसिएट प्रोफेसर भगिनी निवेदिता कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

काल के अनेक खण्डों से गुजरते हुए मनुष्य ने जीवन को सहज और सुगम बनाने के लिए विशिष्ट मान्यताओं और रीतियों का निर्माण किया है। यही मान्यताएँ और रीतियाँ परम्परा का स्वरूप धारण कर लेती हैं और इन्हीं का परम रूप संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित होता है। वस्तुतः संस्कृति व्यक्ति द्वारा बनाई और अपनायी जाती है। संस्कृति से मानव समाज के सभ्य और विकसित होने का पता चलता है। संस्कृति की श्रेष्ठता सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। आधुनिक युग में विज्ञान के विकास ने संस्कृति के परिवर्तन को बढ़ावा दिया है। विज्ञान के विकास के पूर्व ईश्वर सर्वशक्तिमान माना जाता था। मनुष्य के हर सुख–दुख का संबंध ईश्वर से होता था किंतु वैज्ञानिक प्रगति के कारण प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसा जाने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक और धर्म प्रधान संस्कृति का स्थान भौतिकवादी संस्कृति ने ले लिया। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रति लोगों की आस्था समाप्त प्रायः हो गई। वर्तमान भौतिकवादी सभ्यता और संस्कृति ने अध्यात्म और धर्म प्रधान संस्कृति के मल्यों का विघटन कर दिया है। धर्म, नीति, कला, साहित्यादि पर मूल्यों के विघटन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। व्यक्ति चेतना में कुरीतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा ईश्वर के प्रति अनास्था की भावना ने घर कर लिया है। ऐसी पृष्ठभूमि को नाटककारों ने अपने नाटकों में स्थान दिया। सांस्कृतिक विघटन को नाटकों का कथ्य बनाया। भारतीय संस्कृति उच्चादर्शों से परिष्कृत है। संस्कृति के उच्चादर्शों के रक्षार्थ पुरानी पीढ़ी ने संघर्ष किया है किंतु विज्ञान के विकास ने परम्परागत नैतिक मूल्यों में परिवर्तन ला दिया। वर्तमान युवा पीढ़ी ने इन्हीं परिवर्तित मूल्यों को अपने जीवन और भविष्य का आधार बनाया। पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने में मीडिया, विज्ञापन तंत्र, फैशन और टेक्नोलॉजी मुख्य भूमिका निभाते हैं। हिन्दी नाटककारों ने इस आयातित संस्कृति के रूप को अपने नाटकों का आधार बनाया है।

किसी भी जनतांत्रिक देश में मीडिया की अहम् भूमिका होती है। मीडिया अर्थात् समाचार पत्र, इलैक्ट्रॉनिक मीडिया जीवित समाज की रीढ़ है। इसी पर टिका हुआ राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होता है। भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व भारत में छापेखाने की मशीन नहीं थी, हालाँकि अखबारों का प्रचलन था परंतु मुगलकाल में ये अखबार हाथ से लिखे जाते थे, और बहुत सीमित मात्रा में थे। परिणामस्वरूप वे आबादी के अल्पांश के लिए ही उपलब्ध और उपयोगी होते थे और उससे एक सीमित वर्ग ही परिचित हो सकता था, जिसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। राजा राममोहन राय ने भारत में राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना की। इससे पहले भी कई छुटपुट प्रयास किए जा रहे थे, किंतु यहाँ से एक क्रांतिकारी मोड़ आया। राजा राममोहन राय के समय से शुरू हुई पत्रकारिता स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए आगे बढ़ी और विकसित होकर आज मीडिया का रूप धारण कर चुकी है। आज मीडिया का प्रजातंत्र में एक नियत स्थान है, इसके अभाव में विकसित समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। मीडिया के प्रचलन में आने से पूर्व समाज का विकास अत्यंत धीमा था और अधिकांश वर्ग इससे अपरिचित था। जनता अपने अधिकारों के प्रति लगभग सुप्त थी। समाचार पत्रों ने इस दिशा में एक अहम् भूमिका निभाई। उन्होंने समाज को झकझोरा और उनके अधिकारों से परिचित करवाया। इस तरह समाज में इस क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए मीडिया एक बड़ी सीमा तक जिम्मेदार है।

भारत में आई नयी विचारधाराएँ जिन्होंने मानव की सोच में परिवर्तन किया, व्यक्ति को केंद्र में लाकर खड़ा किया। मार्क्सवाद, समाजवाद, अस्तित्ववाद, नारीवाद, दलितवाद आदि का श्रेय मीडिया को ही जाता है। आज हम एक नवीन युग में प्रवेश कर चुके हैं जो केवल भारतीय न होकर वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) का युग है। आज हम किसी निश्चित परिपाटी से बंध कर नहीं चल रहे अपितु हर रोज़ एक नए विचार से परिचित हो रहे हैं। मूल्यों में आ रहे नित नए परिवर्तनों, बदलते हुए मानदंडों, गढ़े जा रहे नए संबंधों के लिए मीडिया भी उत्तरदायी है। विदेशों से आयात की गई इन नई विचारधाराओं ने भारतीय चिंतक वर्ग को प्रभावित किया, जिसके परिणाम स्वरूप विचारों पर आधारित साहित्य की बाढ़ आ गई। इस साहित्य के प्रचार–प्रसार का कार्य समाचार पत्र–पत्रिकाओं आदि ने किया जिसका प्रभाव धीरे–धीरे समाज के सामान्य वर्ग पर देखा जाने लगा। पुराने मूल्य ढहने लगे, संबंधों में शिथिलता आई, व्यक्ति स्वातंत्र्य को बल मिला, कर्त्तव्यों के स्थान पर अधिकारों की चर्चा होने लगी। जिसने एक नए वर्ग को जन्म दिया। भारत जैसे विकासशील देश में

RRIJM 2015, All Rights Reserved

मीडिया एक सक्रिय माध्यम है, जिसके उदाहरण हमारे आस–पास देखे जा सकते हैं। पूरे विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' बनाने की धारणा के पीछे मीडिया की लंबी भूमिका रही है। आज सिनेमा, टी.वी. चैनलों की बाढ़ और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया तंत्र के पूरे जाल की पृष्ठभूमि में दूरदर्शन को मुख्य माध्यम माना जाता रहा है। मीडिया विमर्शकार प्रो. सुधीश पचौरी के अनुसारः ''पी.सी. जोशी कमेटी की रिपोर्ट (1985) इस बात को अच्छी तरह बताती है कि दूरदर्शन की समूची भूमिका और परिकल्पना सामाजिक विकास में योगदान करने वाले माध्यम के रूप में ली गई थी।''[1]

समाचार पत्र–पत्रिकाएँ जन चेतना के प्रसार के सशक्त माध्यम हैं। स्वस्थ पत्रकारिता की पहचान विभिन्न घटनाओं व उनसे संबद्ध विवरणों के सही प्रस्तुतीकरण तथा उनके प्रति अपनाए गए मानवीय दृष्टिकोण से होती है। मत वैभिन्नय के कारण यह आशा तो नहीं की जा सकती कि सभी पत्रकार किसी घटना को एक ही ढंग से प्रस्तुत करें लेकिन उनसे यह आशा तो की जा सकती है कि प्रस्तुतीकरण संतुलित हो, पक्षपात न हो, उसमें तोड़ मरोड़ न हो, घटना को सांप्रदायिक रंग न दिया गया हो अथवा केवल सत्ता की चाटुकारिता से पूर्ण न हो। स्वस्थ आलोचना समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है। अतः पत्रकारों से यह आशा करना भी उचित ही है कि वे निष्पक्ष रूप से अपने इस उत्तरदायित्व की दुनिया से अपरिचित नहीं है। उन्होंने सेठ, पूँजीपतियों, समाचार–पत्रों के स्वामियों तथा सत्ता द्वारा पत्रकारों के दोहन की ओर अनेक स्थलों पर प्रकाश डाला है। साथ ही वे राजनेता और उनके पिछलग्गू अपराधियों को पकड़ने के अपने कर्तव्य को अंजाम देने से भी कभी नहीं चूकते। पर उसके पीछे का सच कुछ और ही है। टेलीविजन पर बड़ी–बड़ी तस्वीरें और आत्म समर्पण के जो चित्र दिखाए जाते हैं, वे वास्तव में कितने सच हैं इसके राजदार तो यह शासक वर्ग और इन्हें बनाए रखने वाला स्वार्थपूर्ण मीडिया ही है। 'डाकू' नाटक में गरीब वचन लाल को लालच देकर उसे डाकू के रूप में आत्मसमर्पण के लिए उकसाया जाता है। असली डाकू लोगों की भीड़ में सिर उठाए खुलेआम घूमते रहते हैं और इस झूठे सच पर सच की मोहर लगाता है मीडिया। सत्ताधारी मीडिया को संतुष्ट करके ही सत्ता में रह सकते हैं। ये वे जानते हैं और उन्हें खुश रखने का हर संभव प्रयास करते हैं–

''तुम तुरंत पत्रकारों की खिदमत करो
खाने–पीने में इनके न हो कुछ कसर
इनसे तस्वीर मेरी निखर आएगी
इसलिए मानता हूँ इन्हें में पिदर''[2]

दयाप्रकाश सिन्हा का 'इतिहास चक्र' नाटक पत्रकार की उस विवशता को भी उद्घाटित करता है, जब वह धन के लोभ में अपनी आत्मा धन्ना सेठ के यहाँ गरवी रख देता हैं। नाटक में व्यंग्य किया गया है कि वह ''जनता की निम्न प्रवृत्तियों को उभारकर, उसका फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करता है। इनके लिए जीवन में अपराध, हिंसा, सेक्स के अतिरिक्त कुछ नहीं।''[3] वस्तुतः जन साधारण के शोषण में सेठ पत्रकार को सोने का जूता भेंट में देता है। और उसे 15 लाख का प्रलोभन देता है।

किंतु सभी पत्रकार ऐसे नहीं होते, उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने प्राणों की चिंता न करके समाज और राजनीति में व्याप्त दुष्चक्र पूर्ण भ्रष्टाचार के प्रति सामान्य जनता को आगाह करते हैं। सच्चाई को प्रकट करने वाले ऐसे पत्रकार स्वाभाविक तौर पर नेताओं अथवा धर्माचार्यों की घृणा के पात्र बन जाया करते हैं। एक जागरूक पत्रकार का कर्तव्य निभाता हुआ नरेंद्र मोहन कृत 'सींगधारी' नाटक का शिव सहज ही आतताई नेता की पाश्विकता का शिकार हो जाता है। उसका अपराध इस सत्य का उद्घाटन करना है कि विघटनकारी घटनाओं में नेता का हाथ है। नेता पहले से ही उसे चेतावनी देता है कि ''बाल बच्चेदार हो, फायदा, नुकसान सोच कर चलो''[4] किंतु पत्रकार शिव नेता पर सींगधारी अर्थात् खूंखार होने के आरोप सार्वजनिक तौर पर लगाता रहता है। अंततः शिव को देशद्रोह के आरोप में पकड़ लिया जाता है और फांसी पर चढ़ा दिया जाता है।

प्रबुद्ध नागरिक की भाँति नाट्यकार पत्रकारों को आगाह करता है कि वे परस्पर समानता और सद्भाव पर आधारित विचारधारा के अनुकूल ही घटनाओं को प्रस्तुत करें। ज्ञानदेव अग्निहोत्री कृत नाटक 'दंगा' में ऐसी कई घटनाओं की ओर दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया गया है जो आकर्षक शीर्षक देकर छापी गई, किंतु वस्तुतः वह एकदम असत्य व निराधार थीं। ''रामपुरा के बदरुद्दीन और पंडित काशीनाथ ने वस्तुतः अपनी दोस्ती को गहरे जख़्म पहुंचाएँ और गहरी नींद सुला दिया।''[5] जैसे शीर्षक से अपने पत्रों की शोभा बढ़ाई जाती है जबकि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। नाट्यकार संदेश देते हैं कि इस तरह के समाचार, संबद्ध पक्षों में घृणा फैलाते हैं और उन्हें व्यर्थ के संघर्ष में झोंक देते हैं। पत्रकारों की इस प्रकार की प्रवृत्ति अत्यंत घातक सिद्ध हो सकती है।

मन्नु भंडारी रचित नाटक 'महाभोज' में भी पत्रकारिता का कुत्सित रूप प्रकट हुआ है। 'मशीन' साप्ताहिक के सहायक संपादक और प्रेस रिपोर्टर के वार्तालाप से स्पष्ट होता

[1] 'दूरदर्शन विकास से बाजार तक की यात्रा' (लेख) मीडिया के पचास वर्ष, संपादक–सुधीश पचौरी, पृष्ठ 91
[2] 'डाकू'– मुद्राराक्षस, पृष्ठ 27
[3] 'इतिहास चक्र'– दया प्रकाश सिन्हा, पृष्ठ 16
[4] 'सींगधारी'– नरेंद्र मोहन, पृष्ठ 26
[5] 'दंगा'– ज्ञानदेव अग्निहोत्री, पृष्ठ 62

है कि ''सेल की दृष्टि से पत्रिकाओं में बलात्कार जैसी घटनाओं को प्रथम पेज पर छापा जाना अनिवार्य समझा जाता है।'' [6] पत्रिकाओं में घटनाओं को सनसनीखेज मोड़ देकर उनकी वास्तविकता को नष्ट कर दिया जाता है।

'बर्फ की मीनार' नाटक में पत्रकारों पर पूँजीपतियों के दबाव को भी दर्शाया गया है। स्वतंत्रता, मौलिक पत्रकारिता को नई दिशा में अग्रसर करने में सक्षम हुआ करती है। किंतु पूँजीवादी युग में पत्रकारिता की स्वतंत्रता की कल्पना कठिन है। इस नाटक में पत्रकार सरोज चोर बाज़ारी करने वाले सेठों के विरुद्ध समाचार पत्र में समाचार प्रकाशित करता है। एक जागरूक नागरिक की हैसियत से वह अपना कर्तव्य पालन करता है, किंतु इसका परिणाम भी उसे भुगतना पड़ता है। अखबार का मालिक उससे क्षमा मांगने तथा उस समाचार का खंडन करने का आदेश देता है। पत्रकार इस आदेश को स्वीकार नहीं कर पाता। वह नौकरी छोड़ देने का ही निश्चय कर लेता है। वह जानता है कि इस युग में पूँजी की सर्वाधिक शक्तिशाली है और प्रचार माध्यमों पर उसका प्रभुत्व विद्यमान है। अपनी माँ के समक्ष वह इस सच्चाई को व्यक्त करता हुआ कहता है– ''ममी, पत्रकारिता पर पूँजी हावी है। सेठ ने फोन किया होगा, विज्ञापन बंद करने की धमकी दी होगी, शायद मामला दबाने के लिए कुछ लालच भी दिया हो।''[7]

आज की भाग दौड–भरी जिदंगी में मीडिया की पहुँच आधुनिक मानव के निजी जीवन और उनके व्यक्तित्व के गहरे से कोने में भी है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वीडियों, इंटरनेट के जाल बिछाकर दृश्य श्रव्य माध्यमों से जहाँ हमें पूरी दुनिया से जोड़ दिया, वहीं उपभोक्ता संस्कृति को भी बढ़ावा दिया। मूल्यों और रिश्तों पर बाज़ार हावी हो गया, वहीं स्त्री अस्मिता और स्त्री स्वातंत्र्य को लेकर गलतफहमियाँ भी फैलती गई। मीडिया ने स्त्री को मंच देने के नाम पर उसकी छवि का दुरुपयोग किया। हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्य में स्त्री विमर्श को लेकर खूब बहसबाजियाँ हुई। इसके बावजूद साहित्य में यह संघर्ष यात्रा जारी रही। एक ओर भोगवादी तंत्र में वस्तु बनती स्त्री की चेतना को आत्म शोधन के लिए चेताया, दूसरी ओर सांप्रदायिक उन्माद और आतंकवाद की परिणतियों से जूझती स्त्री की व्यथा और संघर्ष को नाटकों में लिपिबद्ध किया।

हमारा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया बाजार के दबाव में ऐसे–ऐसे विज्ञापन प्रसारित करता है जो न केवल अश्लील और कुरुचिपूर्ण होते हैं बल्कि वे हमारी संवेदना को जड़ से नष्ट करने का प्रयास करते हैं। यूं भी इलैक्ट्रॉनिक मास मीडिया प्रायः एकतरफा होता है, जिसमें संवाद या तो बिल्कुल नहीं होता अथवा यदि थोड़ा बहुत औपचारिक तरीकें से होता भी है तो थोपा हुआ और एकांगी होता है, तो मीडिया विज्ञापनों को लोगों के दिलों–दिमाग में ऐसे ठूँस–ठूँस कर भर देता है कि वे उन उत्पादों को खरीदने के लिए सोचने लगते हैं और फिर परिवार के सदस्यों की समान सोच अंततः खरीदारी का निर्णय लेने को बाध्य कर देती है। अब लोग इसलिए भी खरीदते हैं कि खरीदने से हैसियत बढ़ती है। पश्चिम की तरह भारत का नया उपभोक्तावादी सिद्धांत है– 'मैं खरीदता हूँ, इसलिए मैं हूँ। जो बराबर खरीदता है वही बार–बार दिखता है, और उसी का अस्तित्व समाज भी बखूबी स्वीकार करता है। अब उत्पाद से ज्यादा उसका दायरा और स्वरूप महत्वपूर्ण हो गया है।' बाजार का गठित सिखाता है 'कल नहीं आज', 'अभी और यहीं' क्योंकि 'कल ही न हो'। कबीर के इस दोहे का विद्रूपण हो रहा है–

'काल्हि करे सो आज कर, आज करै सो अब
पल में परलय होएगी बहुरि करोगे कब'

संभवतः यह सब उपभोक्तावाद और इस आयायित संस्कृति की देन है जहाँ विचारधारा का अंत, इतिहास का अंत, साहित्य का अंत, कविता का अंत आदि घोषित कर दिया गया है।

विकास और आगे बढ़ते जाने की होड़ इस उपभोक्ता संस्कृति की देन है, जो इस दौड़ में दौड़ते हुए मूल्यों को अप्रासंगिक करती जा रही है और मनुष्य निरन्तर भौतिकता की चाह में अपनी संस्कृति, त्याग और प्रेम जैसे मानव, सुलभ गुणों को भूलता जा रहा है। बाहरी चकाचौंध और ग्लैमर ने हमारे भीतर के सौंदर्य की एक नई छवि गढ़ दी है। जिसका संबंध मन एवं आत्मा से न होकर केवल देह है। संबंधों के नए आयाम नजर आ रहे हैं जहाँ प्रेम से ऊपर–भौतिकता हावी है। दैहिक फैशन के साथ–साथ मानसिक रूप से भी व्यक्ति पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता का अनुकरण करने लगा है। विदेश में नौकरी प्राप्त करके वहाँ 'सैटल' हो जाना आज का फैशन बन गया हे। 'दिमागे हस्ती दिल की बस्ती कहाँ है कहाँ' में राजेश और कौशल्या एक ऐसे वृद्ध संपत्ति है, जिनकी संतान अच्छे कैरियर के लिए विदेश में बस चुकी है और वे अपने अकेलेपन से जूझ रहे हैं। अधिक धन कमाने की इच्छा और आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति ने बच्चों को माता–पिता से दूर कर दिया है। ऐसी स्थिति में राजेश और कौशल्या है जिनका खाली घर उन्हें काटने को दौड़ता है। ''...घर। खाई घर, खंदक घर। कैद खाना घर। कैद खाना घर। चार दीवारें घर। कुत्ता घर। हरामजादा घर। उल्लू का पट्ठा घर घर। घर। घर।''[8]

[6] 'महाभोज'– मन्नु भंडारी, पृष्ठ 21
[7] 'बर्फ की मीनार'– विनोद रस्तोगी, पृष्ठ 101–102
[8] 'दिमागे हस्ती दिल की बस्ती कहाँ है कहाँ' महेन्द्र भल्ला, पृष्ठ 171

RRIJM 2015, All Rights Reserved

घर का अकेलापन उन्हें अपनी जिंदगी में खालीपन का अहसास कराता है। यही वजह है कि वे घर से बाहर जाने के बहाने ढूँढ़ते रहते हैं, और घर लौटने की उन्हें कोई जल्दबाजी नहीं होती। इसी कारण राजेश और कौशल्या ने बच्चों के साथ रहने की चाहत में अपनी–अपनी नौकरियाँ छोड़ दी और बच्चों के पास अमेरिका चले गए। लेकिन वहाँ भी उन्हें मानसिक शांति नहीं मिलतीः– ''इतना तड़प रहे हो तो बच्चों को नहीं भेजना था अमेरिका। भेज दिया। खुद अर्ली रिटायरमेंट ले ली। अमेरिका जाएँगे, वहीं रहेंगे। मेरी नौकरी भी छुड़वा दी। यह कोई देश है। इसमें कुछ नहीं रखा है। यह देश रहने लायक नहीं है।... चले गए अमेरिका तो दो महीने में नानी याद आ गई। आई कि नहीं?''[9] राजेश का कथन है– ''मगर वहाँ भी मन नहीं लगा। वो देश यों भी बूढ़ों के लिए नहीं है, तीसरी दुनिया के लिए लोगों के लिए तो बिल्कुल ही नहीं।''[10]

अमेरिकी संस्कृति के अनुकरण का ही उदाहरण है दया प्रकाश सिन्हा का नाटक 'ओह अमेरिका'। नाटककार ने आरंभ में ही स्पष्ट किया है कि ''नाटक अमेरिका विरोधी नहीं है। यह नाटक विरोध करता है उन तमाम विवेकहीन भारतीयों का, जिनके दिल– दिमाग में अभी भी हजार सालों की गुलामी मौजूद है। हज़ार साल की गुलामी उनकी हड्डियों में जम गई है, उनके खून में बहती है। हीन भावना से ग्रस्त ये लोग हर विदेशी चीज़–विचार और पदार्थ के पीछे भागते हैं। अपनी बुद्धि और विवेक को गिरवी रखकर अंधी नकल करते हैं। ये नाटक इन रीढ़–विहीन लोगों का 'केरीकीचर' (विकृत चित्र) है।''[11]

नाटक का एक चरित्र है विवेक। वह सब जगह सब समय मौजूद रहता है। वह सदा सबके साथ और सब में है। वह सत् और असत् का अंतर बताता है। विवेक भारतीय जनमानस की वर्तमान प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए कहता है– ''विदेशियों की नकल करना, उसी में आश्वस्त और गर्वित अनुभव करना, यही तो हमारा राष्ट्रीय चरित्र है....।''[12] युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि समीर अमेरिका और अमेरिकी सोसायटी की विशेषताएँ बताते हुए 'रिवेल्यूशन' के नए अर्थ से अवगत करता है– ''मॉड सोसायटी परमिसिव सोसायटी होती है। वहाँ सेक्स पर कोई बंधन नहीं होता... अमेरिका ने सेक्स क्रांति की है। सेक्स रिवोल्यूशन अमेरिका की दुनिया को सबसे बड़ी देन है।''[13] यह संवाद सुनकर श्याम का कथन है– रिवोल्यूशन। क्रांति। रिवोल्यूशन होता है– रोटी, कपड़ा और दवाई के लिए, न्याय और समानता के लिए– सेक्स क्रांति–इसने तो रिवोल्यूशन का अर्थ ही बदल दिया।''[14] पश्चिमी संस्कृति की नकल ने सेक्स को एक कुण्ठा का रूप दे दिया है। भारतीय संस्कृति के संतुलन और पाश्चात्य संस्कृति के उद्दाम वेग के घालमेल ने असंतुलन की स्थिति पैदा कर दी है।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रत्येक दशक में बदलते परिवेश ने मानव जीवन के चिर काल से चले आ रहे जीवन मूल्यों पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिये हैं। सदियों से चले आ रहे 'मूल्य' तर्क और यथार्थ की टकराहट से टूटते जा रहे हैं। एक नवीन मूल्यहीन संस्कृति की उपज हो रही है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज की पीढ़ी की सोच और मान्यता बदली है, बदल रही है। जिससे हमारे चिरस्थायी मूल्य धर्म, करुणा आदि टूटकर बिखर रहे हैं और इस बिखराव पर एक नयी मूल्य हीन संस्कृति खड़ी हो रही है।

इस मूल्यहीन संस्कृति को लेकर हर साहित्यकार चिन्तित है। कमलेश्वर ने इस संदर्भ में लिखा है– ''हर युग का चिंतक रचनाकार मानव मूल्यों के विघटन से दुखी एवं त्रस्त होकर उन्हें चिरस्थायी होते देखने की लालसा में प्रयासरत कलम के सिपाही की भाँति अपने समय की प्रतिशक्तियों से लड़ता हुआ मानव मूल्यों को जलाये रखने की भरसक कोशिश करता है और संदेह नहीं इसलिए मनुष्य की ये संजीवनी बूटियाँ आज भी उसके चिंतन अस्तित्व में गहरी जड़े जमाये बैठी है।''[15] भारतीय संस्कृति के आधारभूत मूल्य आज टूट रहे हैं। इनके टूटने से साहित्यकार व्याकुल हो जाता है। विवेच्च दशकों के नाट्यकार भी व्याकुल और बैचेन हैं। इसी आकुलता के नाटककारों ने कोशिश की है कि भावुकता और बुद्धि का समन्वय कर समाज को एक ऐसी यथार्थोन्मुखी दृष्टि दी जाए जो एक मूल्य बन जाए। इस मूल्य हीन संस्कृति की उपज से नयी पीढ़ी को बचाने के लिए इसके प्रति इन्होंने विद्रोह व्यक्त किया है।

हमीदुल्ला का नाटक 'आधारशिला' भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता जीवन की आधारशिला है। जन संचार माध्यमों से पाश्चात्य अपसंस्कृति के भुलावे में आकर आज का युवक भटक रहा है। अर्थात् अपसंस्कृति के घुन ने उसे क्षीण और चलता–फिरता मशीनी पुर्जा बना दिया है। यह नाटक युवक के भटकाव को दिखा उसे सही रास्ते पर लाने का प्रयास है। नाटक की नायिका सपना को पाश्चात्य संस्कृति का जुनून सवार है। वह परिवार की एकलौती बेटी है। माँ की असामायिक मृत्यु से, माँ के प्यार, दुलार से वंचित रहती है। वह दोस्तों को इम्प्रेस करने के लिए अंग्रेजी नाच–गाने को जीवन का अंग और अनिवार्य मानती है। सपना और उसके दोस्तों में पाश्चात्य

[9] वहीं, पृष्ठ 171
[10] वहीं, पृष्ठ 208
[11] 'ओह अमेरिका'– दया प्रकाश सिन्हा– भूमिका से उद्धृत
[12] वहीं, पृष्ठ 55
[13] 'ओह अमेरिका'– दया प्रकाश सिन्हा– पृष्ठ 60
[14] वहीं, पृष्ठ 60
[15] नयी कहानी की भूमिका– कमलेश्वर, पृष्ठ 112

अपसंस्कृति एक जहर की भाँति फैल गई है। देर रात तक सैर–सपाटे, नशीली दवाओं का सेवन, दिल की धड़कन बढ़ाने वाले अंग्रेजी नाच, शरीर की थिरकन आदि वृत्तियाँ बसने लग गई हैं। सपना के पिता आनंद भी इस बात से चिन्तित हैं– ''सारे दिन दोस्तों की महफिलें। सिगरेट, सैर–सपाटे, नशे की लत। रात को घर देर से लौटना। बुरी संगत। हे ईश्वर। मैं अभी तक समझ नहीं पाया कि यह लड़की आखिर जीवन में क्या चाहती है।''[16]

इस कुसंस्कृति के प्रभाव से दादाजी भी चिन्तित हैं। दादाजी सपना को इससे बचाने और भारतीय संस्कृति का दर्शन कराने के लिए एक काल्पनिक नाटक खेलने की योजना बनाते हैं। सपना रुपयों के लोभ में आकर अपने दोस्त के सहयोग से आदर्श भारतीय युवती का नाटक खेलती है। सपना नकली नाटक करते–करते असलियत में ही भारतीय संस्कृति को जान–पहचान कर लौट आती है। ''सपना का हृदय परिवर्तन हो गया है, वह अब अपनी संस्कृति की पहचान पर बल देती है।''[17] अतः यह नाटक युवा वर्ग में फैले पाश्चात्य अपसंस्कृति के जहर को निकाल उनमें भारतीय चेतना लाने का सार्थक प्रयास है।

उपभोक्तावादी समाज ने परिवर्तन के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी है। परम्परागत सोच ध्वस्त हो रही है और उत्तर औद्योगिक समाज ने केद्रंवाद को खिसकाकर एक 'नया समाज' प्रस्तुत कर दिया है। यह नया समाज 'डिजिटल ऐज' का समाज हैं जिसमें 'टेक्नोलॉजिकल रिवोल्यूशन' की हर तरफ घूम है। यह रिवोल्यूशन हिन्दी नाटकों के लिए बिल्कुल नया अनुभव है। इससे समकालीन नाटकों के विषय में विविधता और व्यापकता आई है। समकालीन नाटककारों ने कथ्य की दृष्टि से वर्तमान युग के प्रत्येक क्षेत्र और अनुभव को नाटक से जोड़ने, परम्पराओं के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह् लगाने और मनुष्य के विसंगत परिवेश को मुखरित करने के सार्थक प्रयोग किए है।

संदर्भ सूची

1. दूरदर्शन विकास से बाजार तक की यात्रा– सुधीर पचौरी
2. डाकू– मुद्राराक्षस
3. इतिहास चक्र– दया प्रकाश सिन्हा
4. सींगधारी– नरेन्द्र मोहन
5. दंगा– ज्ञानदेव अग्निहोत्री
6. महाभोज– मन्नु भंडारी
7. बर्फ की मीनार– विनोद रस्तोगी
8. दिमागे हस्ती दिल की बस्ती– कहाँ है कहाँ– महेन्द्र भल्ला
9. ओह अमेरिका दयाप्रकाश सिन्हा
10. नयी कहानी की भूमिका कमलेश्वर
11. आधारशिला– हमीदुल्ला

[16] 'आधारशीला'– हमीदुल्ला, पृष्ठ 16
[17] वहीं, पृष्ठ 76